भारत के संदर्भ में 'राष्ट्र' की अवधारणा

डॉ कपिल देव
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू

Email : Kapilshastri.ju@gmail.com

सारांश

भारतीय चिंतन परंपरा में राष्ट्र की एक व्यापक अवधारणा समाहित है जिसमें व्यष्टि से समष्टि तक का विचार समाहित है। लंबे समय तक विदेशी शक्तियों के अधीन रहने एवं अनेक विविधताएं होने के बावजूद भी एक सनातन सांस्कृतिक बंधन हमेशा से रहा है जिसने राष्ट्र को एकता की डोर में अखंड बांधे रखा। पश्चिम राष्ट्र की अवधारणा नस्लीय, जातीय एवं राज्य आधारित है जिसकी तुलना भारत से नहीं की जा सकती। भारत एक प्रकृति प्रदत राष्ट्र है जिसका भाव अतीत से लेकर वर्तमान तक निरंतर प्रवाहमान है। रीति-रिवाज, परंपराएं, त्योहार, इतिहास, महाकाव्य, पर्यावरण आदि के माध्यम से राष्ट्रत्व की अभिव्यक्ति होती है। राष्ट्र भारतीय राजनीतिक चिंतन परंपरा का आधार रहा है। जिस राष्ट्र का दर्शन हमारे वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषियों ने किया, उस राष्ट्र की मान्यता पश्चात्य चिंतन में दूर-दूर तक दिखाई नहीं देती। प्रस्तुत शोध-पत्र में पश्चिम की राष्ट्र सबंधी अवधारणा का ख़डंन करते हुए भारत राष्ट्र के स्वरूप को स्पष्ट करने का पर्यत्न किया गया है।

संकेत शब्द :- राष्ट्र, नेशन, राज्य, राष्ट्रभाव

भूमिका

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है जिसका अस्तित्व चिरकाल से रहा है। अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद इसका राष्ट्र स्वरूप निरंतर जीवंत रहा है।[1] भारत में अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विविधताएं होने के बावजूद भी एक सनातन बंधन हमेशा से रहा है जिसने राष्ट्र को एकता की डोर में बांधे रखा। इस एकता का मुख्य आधार हमारी सनातन संस्कृति है। भारत गत एक हज़ार वर्ष से किसी न किसी प्रकार से विदेशी शक्तियों से संघर्षरत रहा है। इन विदेशी शक्तियों ने अपने अमानवीय कृत्यों द्वारा भारत की राष्ट्रीय चेतना को गहरा आघात पहुंचाने का प्रयास किया लेकिन वह इसके मूल तक न पहुंच सके। समय-समय पर अनेक महापुरुषों एवं जन आंदोलनों द्वारा भारत के राष्ट्र भाव का जागरण होता रहा जिसके परिणामस्वरुप भारत की राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता अक्षुण बनी रही।

पश्चिमी चिंतन परंपरा के अनुसार भारत कभी भी एक राष्ट्र नहीं रहा, बल्कि अनेक जातियों का निवासस्थान रहा है।[2] जिनका सीधा-सीधा संबंध भारत में अनेक नस्लों, जातियों, धर्मों को मानने वालों से है। पश्चिमी इतिहासकारों का मानना है कि भारत राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से कभी एक नहीं रहा तो फिर एक राष्ट्र कैसे हो सकता है? उनके विचारों में राष्ट्र की अवधारणा ही पश्चिम की देन है। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल ने अपने ग्रंथ 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' में लिखा कि भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि एक महाद्वीप है।[3] एक अन्य इतिहासकार जॉन माल्कम ने 'पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया' में सिख और मराठों तक को अलग नेशन बताया।[4] पाश्चात्य विचारक ही नहीं बल्कि विदेशी चश्मे से भारत को देखने वाले रोमिला थापर जैसे इतिहासकारों का भी यह मानना है कि भारत के राष्ट्र के रूप में संगठित होने और राष्ट्रीयता के उदय और विकास में केवल अंग्रेजी शासन का योगदान रहा है। अंग्रेजी साम्राज्य के अभाव में भारतीय कभी भी भारत को राष्ट्र का गौरव नहीं दिलवा सकते थे। किंतु यह एक भ्रांत धारणा है जिसका आधार विदेशी मानते हैं। जबकि

सच्चाई यह है कि भारत में हजारों साल पहले ऋग्वेद काल में, जब ब्रिटिश शासन की कल्पना भी किसी को नहीं रही होगी, तब हमारे मनीषियों ने 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहित:' के रूप में राष्ट्र की अभिव्यक्ति की। यह राष्ट्र राज्य नहीं है। राज्य एक व्यवस्था है, जो राष्ट्र का संरक्षण और पोषण करती है।[5]

ब्रिटिश शासन ने काफी कोशिश करके भारतीयों के मन में यह कुंठा भरने की कोशिश की कि भारत कभी एक राष्ट्र नही रहा और अंग्रेजों ने इसका राष्ट्रीयता से परिचय करवाया। चाहे देश में कभी राजनीतिक एकता रही हो या न रही हो, सांस्कृतिक धरातल पर भारतवर्ष हमेशा एक राष्ट्र रहा है। सच्चाई तो यह है कि जहाँ यूरोप के विचारको ने राजनीतिक एकता को राष्ट्रीयता का पर्यावाची माना और इस्लामी देशों ने धर्म को राष्ट्रीयता का आधार माना, वहीं भारतीय विचारकों ने प्राचीन काल से ही भारत की सनातन संस्कृति को राष्ट्रीयता का केंद्र बिंदु माना।[6] आगे चलकर अनेक अनुभवों और घटनाचक्रों ने सिद्ध कर दिया कि भारतीय विचारक सही थे।

समस्त यूरोप को तत्वज्ञान की शिक्षा देने वाले तथा हम ही राज्य करने के लिए जन्मे हैं और इसलिए अन्य मानव समाजों को हमारा दास्य स्वीकार करना चाहिए, ऐसी उन्मत गर्जना करने वाले प्लेटो, अरस्तु, फिलिप व् एलेक्जेंडर का वह ग्रीक राज्य आज कहाँ है? समस्त यूरोप को विधिनियम देने वाला सीज़र का वह रोमन राष्ट्र आज कहाँ है? जड़वाद पर अधिष्ठित नये पूंजीवादी व् साम्यवादी राष्ट्र आज कहाँ दिखाई देते हैं। हमारे जितना ही दिर्घकालिक चीन कल तक बौद्धधर्मी था किन्तु आज साम्यवाद को अंगीकार करके वहां अब सांस्कृतिक रूप से पतित एक नवीन राष्ट्र का जन्म हुआ है। इस प्रकार अपने राष्ट्रभाव अथवा राष्ट्रीय अस्मिता का परित्याग करने वाले राष्ट्र अतीत की स्मृति बन जाते हैं लेकिन जब किसी राष्ट्र द्वारा भिन्न प्रकार के भावजीवन को स्वीकार कर लिया जाता है तो उसके स्थान पर एक नवीन राष्ट्र का जन्म होता है। इस प्रकार ग्रीक राष्ट्रों से लेकर ज़ार के रशिया तक फैले राष्ट्रों के पतन का कारण यही रहा।[7]

राष्ट्र भारतीय राजनीतिक चिंतन परंपरा का आधार रहा है। इसका वर्णन अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, आदि महान ग्रन्थ सबकी श्रद्धा के केंद्र बने, तीर्थक्षेत्र, नदी, पर्वत, देवी-देवता, ऋषि-मुनि, सत्पुरुष आदि के साथ हमारा राष्ट्र एकात्मकता की भावना से खड़ा रहा। हमारे राष्ट्र जीवन की रचना ही कुछ ऐसी थी कि स्नान करते समय जब- *'गंगे च यमुने चैव, गोदावरि, सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावेरि जलेस्मिन सन्निधिं कुरु'* श्लोक का उच्चारण करते है तो संपूर्ण भारतवर्ष का स्मरण हो जाता है।[8] यही कारण था कि आगे चलकर विदेशी सत्ता का राज होने के बाबजूद भी भारत का राष्ट्र स्वरूप जीवंत बना रहा।

वर्तमान में राष्ट्र व राज्य की अवधारणा में व्यापक अंतर्द्वंद देखने को मिलता है। राष्ट्र और राज्य की उत्पत्ति के सबंध में भारतीय विद्वानों ने समय-समय पर अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। बृहस्पति, मनु, शुक्र, कौटिल्य, कामन्दक जैसे विद्वानों ने अपनी रचनाओं (जैसे मनुस्मृति, शुक्रनीति, अर्थशास्त्र, नीतिसार इत्यादि) के माध्यम से राष्ट्र की अभिव्यक्ति की है। वर्तमान संदर्भ में राष्ट्र, नेशन, राज्य को समानार्थी मानकर इनका प्रयोग एक-दूसरे के स्थान पर किया जाता है। हालांकि इन तीनों शब्दों में आधारभूत अंतर है। जिसका भारत के संदर्भ में स्पष्ट होना बहुत आवश्यक है।

राष्ट्र

'राष्ट्र' शब्द की व्युत्पत्ति रज धातु से हुई है जिसमें औणादिक 'ष्ट्रन' प्रत्यय जोड़ा गया है। तदनुसार इसका अर्थ है-'राजते दिप्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम' अर्थात जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है वह राष्ट्र कहलाता है। 'राजते तत राष्ट्रम' व्युत्पति से संकेत मिलता है कि वह भूभाग जो सर्वतंत्र स्वतंत्र हो, किसी से दबाया ना गया हो, राष्ट्र कहलाता है।[9] पाश्चात्य दर्शन राष्ट्र के रूपांतरण को 'नेशन' (Nation) मानता है। नेशन शब्द का उद्भव लैटिन शब्द 'नेशियो' (Natio) से हुआ है। नेशियो का अर्थ "पैदा होना" अथवा "जन्म लेना" है। इस प्रकार नेशन उस मानवीय समूह को कहते हैं जो जाति, धर्म, भाषा, परंपरा आदि के परिणामस्वरुप एक हो।[10] इस प्रकार अंग्रेजी के नेशन शब्द का अभिप्राय जाति से है। जिसमें एक मत, एक रीति को मानने वाला, एक भाषा बोलने वाला, एक राज्य के अधीन रहने वाला जनसमुदाय ही नेशन है। इस प्रकार उक्त नेशन की जो विशेषताएं हैं वे राष्ट्र की तुलना में सीमित एवं संकीर्ण हैं।

प्रसिद्ध अंग्रेजी शब्दकोष Webster Dictionary के अनुसार- "A people inhabiting a certain territory and united by common political institutions/an aggregating of persons speaking the same or a cognate language and usually sharing a common ethnic origin."[11]

Oxford Dictionary में राष्ट्र का अर्थ इस प्रकार दिया गया है– "A large number of people of mainly common descent, language, history etc. usually inhabiting a territory bounded by defined limits and forming a society under one government."[12]

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि एक विशेष भूभाग में निवास करते हुए तथा एक ही राजनीतिक संस्था के द्वारा एकीकृत जनसमुदाय ही राष्ट्र है जो एक ही प्रकार की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएं रखता है।

उक्त नेशन की विशेषता यूरोपीय और पश्चिमी राज्यों की है। ए आर देसाई के अनुसार इंग्लैंड में नेशन की स्थापना पहले हुई। रोमन चर्च की सत्ता के विरुद्ध इंग्लैंड को संघर्ष करना पड़ा। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय प्रोटेस्टेंट चर्च की स्थापना हुई तथा अनेक राज्य अस्तित्व में आए। प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत राष्ट्र संघ एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत सयुंक्त राष्ट्र संघ की स्थापना यह प्रमाणित करती है कि आज का मानव समाज मूलतः नेशन निर्मित है। हालांकि सयुंक्त राष्ट्र संघ एक राष्ट्र नहीं बल्कि राज्यों का एक संगठन मात्र है। ए आर देसाई आगे कहते हैं कि नेशन के लोग निश्चित भूभाग में रहते हैं और प्राय: एक ही भाषा बोलते हैं। यूरोप में नेशन का अन्य आधार भाषा ही है। जैसे अंग्रेजी भाषा से इंग्लैंड, फ्रेंच भाषा पर फ्रांस, जर्मन भाषा पर जर्मनी, रूसी भाषा पर रूस, पॉलिश भाषा पर पोलैंड जैसे नेशन बने जो आज भी हैं।[13] इस प्रकार स्पष्ट है कि नेशन का आधार भाषाई एवं संकुचित है तथा वह राष्ट्र जैसा व्यापक नहीं। वास्तव में प्राचीन यूरोप में राष्ट्र थे ही नहीं बल्कि साम्राज्य थे जिनका रक्तरंजित इतिहास रहा है। नस्लीय राष्ट्रवाद के कारण यह साम्राज्य हमेशा आपस में उलझे रहते थे। राष्ट्र के स्वरूप में प्रमुख रूप से भौगोलिक राजनीतिक और सांस्कृतिक इकाइयां सम्मिलित रहती हैं। लेकिन मुख्य रूप से भूमि, उस पर निवास करने वाला समाज और उनकी संस्कृति इन तीनों तत्वों के मिलने से राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र केवल मिट्टी, पर्वत, नदी आदि नहीं है, उनकी सत्ता तभी सार्थक है जब उस पर लोगों का निवास हो और लोगों की सत्ता तभी सार्थक है जब उनमें संस्कृति का अस्तित्व एवं विकास हो। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक ऐसा जनसमुदाय जो एक निश्चित भूभाग पर रहता हो जिसकी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति हो तथा जो एकात्मकता के बंधन में बंधा हो, राष्ट्र है। राष्ट्र, गांव या शहर से नहीं बनता, राष्ट्र तो अपने निवासियों के त्याग एवं तप की रगड़ से उत्पन्न देशभक्ति और देशाभिमान की भावना से बनता है।[14]

राष्ट्र एवं राज्य

राष्ट्र, राज्य का आधार है। राज्य तो राष्ट्र का केवल अंशमात्र है जो राष्ट्र से ही उत्पन्न होता है। राज्य से राष्ट्र का निर्माण नहीं होता। राष्ट्र एक स्थाई तत्व है संगठित समाज का एक स्वरूप है। जब तक समाज में विकृतियां नहीं आ जाती राज्य की आवश्यकता नहीं पड़ती अर्थात समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए ही राज्य अस्तित्व में आया।

वर्तमान पश्चिमी देशों में राष्ट्र-राज्य की अवधारणा प्रचलित है, जिसका उद्भव 16वीं शताब्दी में वेस्टफेलिया संधि से माना जाता है, के अनुसार राष्ट्र और राज्य एक ही हैं। हालांकि दोनों में अंतर है। राज्य की बढ़ती शक्ति के कारण इसे सर्वोपरि मान लिया गया है। राज्य एक दृश्यमान सत्ता है। इसीलिए जब हम राष्ट्र का वर्णन करते हैं तो हमारे सामने राज्य की एकमात्र दृश्यमान सत्ता रहती है जो कि राष्ट्र की अभिव्यक्ति का कठोर आधार बनकर हमारे सामने उपस्थित रहता है। राज्य का स्वरूप अस्थिर रहता है जबकि राष्ट्र का स्वरूप अस्थिर नहीं रहता। राष्ट्र एक जीवमयी इकाई है जिसका अनेक कालखंडो से विकास होता रहा है और पीढ़ी दर पीढ़ी इसका स्वरूप बदलता रहा है। इस प्रकार राष्ट्र एक स्थायी सत्य है जिसको पूर्ण करने के लिए राज्य का निर्माण किया गया।[15]

जमीन का टुकड़ा मात्र होने से कोई राष्ट्र नहीं बन जाता। व्यक्ति जीवन में जो महत्व अस्मिता का है वैसा ही राष्ट्रीय अस्मिता का भी है। राष्ट्रीय अस्मिता के रहने से ही राष्ट्र जीवित रहता है। राष्ट्रीय अस्मिता, चित्ति की ही घोतक है। प्राचीन वैदिक ग्रंथो में चित्ति की पहचान राष्ट्र की आत्मा के रूप में की गयी है। चित्ति शक्तिमान हो तो राष्ट्र का चौमुखी विकास होता है, प्रत्येक राष्ट्र की चित्ति उसका जीवनलक्ष्य होता है। उसके क्षीण पडने से राष्ट्र कमजोर होता है तथा उसके लोप होने से संपूर्ण राष्ट्र का विनाश हो जाता है। विश्व पटल पर प्राचीन यूनान, मिस्र, बेबीलोन सब अतीत की स्मृति बन गए। यह सब वहां की राष्ट्रीय अस्मिता अर्थात मूल प्रकृति के नष्ट होने के कारण ही हुआ।[16]

भारत राष्ट्र का स्वरूप

भारतीय संदर्भ में यदि विचार किया जाए तो राष्ट्र शब्द अत्यंत प्राचीन है। सभ्यताओं के उषस काल में जब आज के तथाकथित विकसित राष्ट्रों में सभ्यता की किरणें भी प्रस्फुटित नहीं हुई थी तब भारत में वैदिक ऋषियों ने राष्ट्रभाव का दर्शन किया था। जिस राष्ट्र का दर्शन हमारे वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषियों ने किया उस राष्ट्र की मान्यता पश्चात्य चिंतन में दूर-दूर तक नहीं।[17]

यूरोपीय संदर्भ में केवल आर्थिक और राजनीतिक इकाई के रूप में राष्ट्र की अवधारणा से भिन्न भारत राष्ट्र के रूप में एक सांस्कृतिक इकाई है। इसके तीन प्रमुख तत्व हैं- 1) एक विशाल भूखंड, 2) इसके प्रति मातृभूमि का भाव रखने वाला समाज एवं 3) इतिहास, संस्कृति, महापुरुषों और जीवनमूल्यों के प्रति उस समाज की समान अनुभूति। ये तत्व ही राष्ट्र के स्वरुप को स्थूल, भौगोलिक या भौतिक इकाई से ऊपर एक जीवमान अभिव्यक्ति देते हैं। इनसे ही परस्पर एकात्मता की भावना सुदृढ होती है और समाज में शांति, सौहार्द व् बंधुत्व का भाव बढ़ता है। यजुर्वेद के पृथ्वी सूक्त में 'माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्या:' कहकर इसी राष्ट्रभाव को मजबूत किया गया है।[18]

राष्ट्र शब्द का प्रयोग अनेक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में देखने को मिलता है। ऋग्वेद संहिता में 'राष्ट्रं क्षत्रियस्य', 'राजा राष्ट्रानाम', 'राष्ट्रं गुपित् क्षत्रियस्य', आदि संदर्भों से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय के द्वारा शासित भूभाग को राष्ट्र कहते है। यजुर्वेद के दशम अध्याय में राष्ट्र शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अथर्ववेद में राष्ट्र शब्द का प्रयोग 58 बार हुआ है जिसमें राष्ट्र का हित, राष्ट्र की रक्षा, राष्ट्र की संकल्पना उपस्थित है। वहां कहा गया है कि 'ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रम' अर्थात् राष्ट्र ऋत, सत्य और तप है।[19] वैदिक मंत्रों में राष्ट्र का स्वरूप अनेक बार आता है। वैदिक काल में राष्ट्र से समेकित अनेक शब्द हैं। जैसे राष्ट्रकाम:, अभिराष्ट्र:, राष्ट्रदिप्सव:, राष्ट्रभृत:, राष्ट्रगोप, इत्यादि।[20] वैदिक संदर्भों के विवेचन द्वारा प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण से 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है तथा उसके स्वरूप, आधार और प्रमुख तत्वों आदि के भी संकेत मिलते हैं। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने राज्य के सप्तांग सिद्धांत में राष्ट्र का विभिन्न कथनों में उल्लेख किया है और कृषि, धान्य, उपहार कर, वाणिज्य लाभ, तीर्थ लाभ आदि राष्ट्र के लिए आवश्यक बताए हैं। कामन्दक नीतिसार में राजा द्वारा राष्ट्र समृद्धि और रक्षा की कामना की गई है।[21]

भारत के लिए राष्ट्र मानव निर्मित नहीं अपितु सहज रूप से विकसित एक शाश्वत भाव है। दुर्भाग्यवश भारत की प्राचीनता के कालखंड में विदेशी सत्ताधारीयों के द्वारा राष्ट्र के वास्तविक भाव को ना समझने और ग्रहण ना कर पाने की क्षमता या राजनीतिक विफलताओं के कारण राष्ट्र के समानार्थी अंग्रेजी शब्द नेशन का प्रयोग किया जाने लगा। यहीं से भारतीय बौद्धिक वर्ग में राष्ट्र और नेशन को लेकर एक विभ्रम उत्पन्न हो गया। किसी ने कहा भारत एक राष्ट्र नहीं है, तो किसी ने कहा कि भारत में अनेक सारी राष्ट्रीयताएं हैं। कारण स्पष्ट था कि पश्चात्य चिंतन ने भारत के राष्ट्र भाव का दर्शन ही नहीं किया था।[22]

हर एक राष्ट्र की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है जिसके आधार पर वहां के लोग अपने आचार-विचार, रीती-रिवाज, तीज त्यौहार एवं समाजिक जीवन का निर्माण करते हैं। इतिहास साक्षी है कि कई देशों की राष्ट्रीयता की निर्माण प्रक्रिया में उनकी सभ्यता एवं संस्कृति का विशेष योगदान रहा है। रीती-रिवाज, परंपराएं, तीज त्योहार, इतिहास, महाकाव्य, पर्यावरण आदि के माध्यम से राष्ट्रत्व की अभिव्यक्ति होती है। जय-पराजय पर हमारी प्रतिक्रियाएं, वैज्ञानिक प्रगति, विश्वगुरु बनने की हमारी आकांक्षा, राष्ट्रत्व के विविध रूप हैं जिनकी अभिव्यक्ति समय-समय पर होती रहती है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, "हमारे राष्ट्रीय जीवन का भागीरथी प्रवाह आदिकाल से प्रवाहित हो रहा है। इस राष्ट्रत्व के प्रवाह का कण-कण पवित्र है। यद्यपि किसी भी काल का विचार मन को निर्मल करके देशभक्ति का संचार कर देता है लेकिन जिस काल में महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ उसका महत्व ओर भी अधिक है। महापुरुषों के जीवन और यश की स्मृति जनमानस के चित पर उनका प्रभाव राष्ट्र के लिए अमूल्य संपत्ति और शक्ति का स्त्रोत है। उनके चिंतन और विचार ने नवीन उत्साह और सजीवता उत्पन्न की।" दीनदयाल जी आगे कहते हैं कि भारत में जब बौद्ध धर्म का निरंतर विस्तार होता जा रहा था तथा भारतीय मान्यताएं और संस्कृति अंतिम सांसे ले रही थी तब जगतगुरू आदिशंकराचार्य के नेतृत्व में भारतीय समाज ने एकजुट होकर अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा की। उसी का परिणाम है कि राष्ट्र की आत्मा का प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ तथा वह शक्ति संपन्न बनी रही। आज के समय में भी वही संस्कृति और राष्ट्रीयता हमारे हृदय में विद्यमान है।[23]

पाश्चात्य शब्द 'नेशन' जिसे राष्ट्र का समानार्थी माना जाता है वह एक आधुनिक अवधारणा है जो चर्च से मुक्ति के लिए प्रोटेस्टेंटो द्वारा किए गए संघर्ष के परिणामस्वरुप राज्य की स्वतंत्रता के रूप में उत्पन्न हुई और जिस क्षेत्र को स्वतंत्रता प्राप्त हुई वह अपनी संप्रभुता को नेशन के रूप में प्रकट करने लगा। इस प्रकार पश्चात्य नेशन का स्वरूप भू-राजनैतिक (Politico-Territorial) है। जिनकी भाषा, वंश परंपरा और इतिहास एक समान था उन्होंने अपने आप को एक नेशन घोषित कर दिया। पश्चात्य नेशन की अवधारणा का केंद्रीय बिंदु राज्य है।[24]

पश्चात्य चिंतन में राज्य के बिना राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। दूसरी तरफ भारत का राष्ट्रभाव किसी संघर्ष का परिणाम ना होकर निसर्ग का परिणाम है। जिस दिन भारत की भूमि पर विचरण करने वाले मानव ने इस भूमि को अपनी माता के रूप में देखा, उसी दिन भारत का राष्ट्रभाव प्रस्फुटित हो गया। जिसका प्रमाण मानव इतिहास के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेदों के द्रष्टा ऋषियों के इस उदार से प्रकट होता है- 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:'। अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमि का पुत्र हूं। यही दृष्टि भारत राष्ट्र की भावभूमि का प्रथम बीज है। यही राष्ट्र की दैवीय चेतना जिसे शास्त्राकारों ने चित्ति कहा है उसके प्रथम मानवीय प्रकटीकरण का प्रस्फुटन है। सृष्टि के साथ सहजात यह चेतना राष्ट्र की आत्मा है जो उसकी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, राष्ट्रीय पुरुषों के चरित्र ही नहीं अपितु प्रकृति, पर्यावरण, नदी, पर्वत सभी के साथ अपनत्व का भाव विकसित करती है। इसी राष्ट्रीय शक्ति को वैदिक ऋषियों ने राष्ट्र की सभी विभूतियों को एकता प्रदान करने वाली शक्ति 'अहं राष्ट्री संगमणि वसुनाम' के रूप में प्रकट किया है। राष्ट्र की सभी विभूतियों को एकता के सूत्र में बांधने वाली यह राष्ट्रीय शक्ति ही चित्ति है। यह संगमणि शक्ति राष्ट्र की भौतिक समृद्धि, भौतिक ज्ञान एवं आत्मिक चेतना को एकात्म एवं संगठित कर राष्ट्र को प्रकट करती है। इसी शक्ति का विराट के रूप में प्रस्फुटन ही राष्ट्र की संस्कृति, संस्कार, भौगोलिक स्वरूप, पर्वत, नदी, तीर्थ, वनस्पति ही नहीं, भूमि के कण-कण के प्रति अपनत्व एवं बलिदान की भावना उत्पन्न करती है। जब यही राष्ट्रीय चेतना कमजोर पड़ती है तब आपस में ही अंतर्द्वंद और संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट कहा है कि "भूमि उन्हीं के लिए धन-धान्य, सुख-समृद्धि एवं वैभव रूपी पेय प्रदान करती है जिन लोगों में इसके प्रति मातृभाव होता है।"[25] जन और भूमि का यह परस्पर सबंध पुत्र और मां के समान होता है। हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारत माता है केवल भारत नहीं। माता शब्द को हटा दें तो भारत केवल मात्र जमीन का एक टुकड़ा रह जाएगा।[26]

दीनदयाल उपाध्याय ने चित्ति को राष्ट्र के लिए विशेषकर भारतीय राष्ट्र के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके अनुसार व्यक्ति की आत्मा के समान ही राष्ट्र की भी आत्मा होती है। इसी के परिणामस्वरुप राष्ट्र में एकात्मकता प्रस्फुटित होती है। यह (चित्ति) किसी जनसमूह के देश विशेष में रहने के कारण उसकी संस्कृति, साहित्य और धर्म में व्यक्त होती है। चित्ति में एकता ही समान परंपरा, इतिहास और सभ्यता का निर्माण करती है। अतः किसी राष्ट्र की एकता के कारण संस्कृति, सभ्यता, भाषा, धर्म आदि की एकता नहीं, किन्तु यह तो मूल कारण चित्ति के व्यक्त परिणाम है। चिति के प्रकाश से ही राष्ट्र का अभ्युदय होता है और चित्ति के विनाश से राष्ट्र का अधो:पात होता है।[27]

किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी चित्ति के अलोक में ही संभव होता है। भारतीय राष्ट्र के अलोक का कारण भी चित्ति ही है। आज भारत उन्नति की आकांक्षा कर रहा है, संसार में बलशाली एवं वैभवशाली राष्ट्र के नाते खड़ा होना चाहता है। भारत विश्व गुरु बनने की राह पर अग्रसर है। ऐसी स्थिति में हमें अपने राष्ट्र की चित्ति का ज्ञान होना अति आवश्यक है। बिना चित्ति के ज्ञान के अभाव में हम ना तो अपने प्रयासों में फलीभूत हो सकते हैं और ना ही भारत को परमवैभव के शिखर तक पहुंचा सकते हैं। हमारे राष्ट्र की आत्मा का स्वरुप क्या है? इसकी व्याख्या करना कठिन है लेकिन इसका साक्षात्कार करना संभव है। जिन महापुरुषों ने राष्ट्रात्मा का पूर्ण साक्षात्कार किया, जिनके जीवन में चित्ति का प्रकाश उज्जवलतम रहा, उनके जीवन को समझने से या उनके जीवन की क्रियाओं या घटनाओं का विश्लेषण करने से अपने राष्ट्र की चित्ति के स्वरूप की कुछ झलक पा सकते हैं।[28]

इतिहास किसी भी राष्ट्र के महानतम प्रसंगों का साक्षी होता है इसलिए वहां के नागरिकों को अपने राष्ट्र के इतिहास एवं उसके स्वरूप का बोध होना आवश्यक है। इससे उस राष्ट्र के नागरिकों में अपने राष्ट्र के प्रति अपनत्व का भाव जागृत होता है एवं आगामी पीढ़ियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार होता है। भारत के संदर्भ में सिकंदर, मोहम्मद गौरी, महमूद गजनबी, बाबर जैसे विदेशी आक्रांताओं के नाम सुनने मात्र से ही हमारे मन में आक्रोश पैदा होता है। किंतु जब हम गुरु गोविंद सिंह, छत्रपति शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप जैसे

वीरों का उल्लेख करते हैं तो हमारा हृदय आदरभाव, श्रद्धा एवं सम्मान से भर जाता है। यानी राष्ट्र के रक्षक महापुरुषों के प्रति आदरभाव राष्ट्र के निर्माण का आधार है।[29]

चित्ति का स्वरूप हमेशा कल्याणकारी होता है। इसके जागृत रहने पर राष्ट्रहित एवं व्यक्तिहित के बीच कहीं कोई संघर्ष नहीं रहता। राष्ट्र कल्याण में व्यक्ति कल्याण और व्यक्ति कल्याण में राष्ट्र कल्याण की भावना एकाएक हो जाती है। जब चित्ति का जागरण होता है तब संपूर्ण राष्ट्र अपार ऊर्जा एवं वैभव के साथ एक लय में अपने विराट का प्रकटीकरण करता है। इसी अवस्था के लिए वैदिक ऋषियों ने कहा है "तुम्हारे विचार समान हो अर्थात् तुम्हारे लक्ष्य और उसे प्राप्त करने के विचार समान हो। तुम्हारी सभा समान हो अर्थात सभा में किसी के साथ पक्षपात न हो। तुम सभी का मन एवं चित एक समान भाव से भरा हो, मैं तुम सबको समान मंत्र और भोग प्रदान करता हूं।"[30] अतः स्पष्ट है कि बिना एक भाव, एक चेतना और एक मन के समाज भोग प्राप्त नहीं कर सकता और इस एकता का प्रकटीकरण ही राष्ट्र का स्वरूप है जिसमे राज्य एक घटक मात्र है।

विराट राष्ट्र का प्राण है तो चित्ति उसकी आत्मा है। जब चित्ति का प्रकाश जन-जन में अलौकिक होकर जब संगठित स्वरूप धारण कर लेता है तो विराट की अभिव्यक्ति होती है, जो इस लोक एवं परलौकिक जीवन के सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने में सामर्थ्यवान होता है। यही विराट राष्ट्रीय जीवन का सात्विक आधार है। समष्टि या समाज के हितार्थ व्यष्टि द्वारा आत्मत्याग करने की प्रेरणा चित्ति के भाव द्वारा ही प्रेरित होती है। समष्टि के रक्षार्थ यह एकीकृत शक्ति ही चिति और विराट को समझने का आधार है।[31]

राष्ट्र के परम वैभव के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उधार मांगी हुई संपन्नता एवं परिस्थितियों के दबाव में उठाए गए कदमों को उचित नहीं माना जा सकता। इसके लिए दो अनिवार्य शर्ते हैं। पहली तो यह कि वह वैभव हमारे अपने राष्ट्रीय पुरुषार्थ से प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए संपूर्ण राष्ट्र की कार्यशक्ति का संगठित होना आवश्यक है। दूसरी आवश्यक शर्त यह है कि संगठित कार्यशक्ति के द्वारा वैभव प्राप्त करने की सफलता धर्म का संरक्षण करते हुए होनी चाहिए।[32] अर्थात धर्म की रक्षा करते हुए हमारी संगठित कार्यशक्ति विजयशालिनी हो। ऐसा होने पर भारतीय राष्ट्र का परम वैभव तक पहुंचना निश्चय है।

हमारे मनीषी राष्ट्र के ऐसे कल्याण की कल्पना करते थे जिसमें मूल भारतीय जीवन दर्शन, परंपराओं, धर्म, आस्था एवं नैतिकता के आधार पर राष्ट्र का विकास व कल्याण हो। राष्ट्र जीवन सफल, समर्थ व समृद्धशाली हो किंतु अपने शाश्वत जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए। भारत राष्ट्र की आत्मा (चित्ती) का साक्षात्कार हमारा ध्येय होना चाहिए। इसके द्वारा ही हम क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद जैसी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे। अपने देश की समृद्धि एवं जन के सुख और हित की व्यवस्था कर सकेंगे तथा मानवता की प्रगति में अपना योगदान दे सकेंगे। इस ध्येय के सहारे ही हम राष्ट्र के जन-जन में प्रबल पुरुषार्थ, त्याग और तपस्या के भाव पैदा कर सकेंगे, इसी स्थिति में उन्हें कर्म की प्रेरणा मिलेगी और उस कर्म की आराधना में उनके जीवन का विकास होगा।[33]

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्र एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मनोभाव से परिपूर्ण अवधारणा है। इसे पश्चिम के राज्य या नेशन शब्द के समानार्थी नहीं माना जा सकता। राष्ट्र एक जीवंत आत्मा के समान है जिसमें व्यष्टि से समष्टि तक का विचार समाहित है। राष्ट्र शब्द का उद्भव व प्रचलन भारतीय पृष्ठभूमि का है जबकि नेशन शब्द विदेशी पृष्ठभूमि का है। राष्ट्र का अस्तित्व बहुमत और अल्पमत पर आधारित नहीं रहता। राष्ट्र की एक स्वयंभू सत्ता है। वह स्वयं प्रकट होती है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक इकाईयों की स्थापना करती है। इन विभिन्न इकाइयों में राज्य भी एक है। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र की एक इकाई है न कि दोनों समानार्थी हैं।[34]

आज के युग में प्रत्येक राष्ट्र अपने-अपने हितों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील है। परिणामस्वरुप राष्ट्रहित पर अवसरवादिता हावी होती जा रही है जिसके कारण विश्व के राष्ट्रों में हितों के टकराव की स्थिति बनी हुई है। यह किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व के लिए खतरा हो सकता है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि विश्व को संघर्षात्मक स्थिति से बचाकर सृजनात्मक बनाया जाए। इस कार्य में राष्ट्रीय चेतना की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। राष्ट्रीय चेतना का प्रधान तत्व (चित्ति) अतीत की गहराइयों का अनुसंधान है। प्रत्येक राष्ट्र की जीवनधारा में ज्वार भाटे की तरह उत्थान-पतन का अनवरत क्रम चलता रहता है। विकट अंधकार के पश्चात पौ फटती आशा की किरण,

मृत होते समाज में उसका पुनर्जीवन, हर ठहराव के पश्चात चमत्कारिक आत्मबल एवं जीवन को स्फूर्ति प्रदान करने वाली लहर को बार-बार भारतीय इतिहास में प्रकट होते देखा गया है। समय-समय पर समूचे भारतीय राष्ट्र को संगठित करने का काम इसी प्रधान तत्व द्वारा किया जाता रहा है। स्वाधीनता के कालखंड में मैकाले द्वारा स्थापित शिक्षा प्रणाली ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना को भ्रमित कर दिया। परंतु यह खेदजनक है कि स्वतंत्रता के बाद भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया जा सका अपितु पश्चिमी पूंजीवाद और समाजवाद की वैचारिकी को ही विद्वतापूर्ण कसौटी मान लिया गया। यह शिक्षा प्रणाली हमारे समाज को राष्ट्र की मूल भावना एवं चेतना से अवगत कराने में असफल रही है। आज इसी का परिणाम है कि देश में आतंकवाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद जैसी विकृतियां समय-समय पर यत्र-तत्र दिखाई देती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि राष्ट्र की वास्तविक चेतना एवं उसके स्वरूप से समाज को अवगत कराया जाए।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, डॉ शशि, (2013), संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद और भारतीय राज्यशास्त्र, विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 1
2. वही, पृष्ठ 45
3. Mill, James, (1817), The History of British India, Baldwin Cradock and Joy, London.
4. Malcolm, John, (1826), Political History of India, Vol. I, John Murry Albemarle Street, London.
5. शर्मा, बलदेव भाई, (2018), भारत: सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 58-59
6. बाली, सूर्यकान्त, (2012), भारत की राजनीति के महाप्रश्न, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, पृष्ठ 13-14
7. हरदास, महापहोपाध्याय बाल शास्त्री, (2015), वैदिक राष्ट्र दर्शन, सुरुचि प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 10-11
8. भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानंद, (1999), पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खंड- 5, राष्ट्र की अवधारणा, सुरुचि प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 53
9. तिवारी, डॉ शशि, (2013), पृष्ठ 1
10. वही, पृष्ठ 2
11. New Webster Dictionary, पृष्ठ 993
12. Oxford English Dictionary, पृष्ठ 789
13. देसाई, ए आर, (1977), भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 2-3
14. तिवारी, डॉ शशि, (2013), पृष्ठ 5
15. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, (2016), दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वांग्मय, खंड 15, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 13
16. भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानंद, पृष्ठ 75
17. प्रकाश, डॉ चन्द्र, The Journal of Indian Thought and Policy Research, ISSN 2230-7001, Issue 1, March-September, 2018, पृष्ठ 1
18. शर्मा, बलदेव भाई, पृष्ठ 58
19. उपाध्याय, विभा, (2018), राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा: समीक्षा, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, पृष्ठ 19
20. तिवारी, डॉ शशि, पृष्ठ 33
21. उपाध्याय, विभा, पृष्ठ 22
22. प्रकाश, डॉ चन्द्र, पृष्ठ 1
23. सिंह, अमरजीत, (2016), एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 241
24. प्रकाश, डॉ चन्द्र, पृष्ठ 1
25. वही, पृष्ठ 2

26. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, (2016), खंड 15, पृष्ठ 23
27. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, (2016), खंड 1, पृष्ठ 118
28. मिश्र, ओम प्रकाश, भारत राष्ट्र की चित्ति, The Journal of Indian Thought and Policy Research, ISSN 2230-7001, Issue-1, March-September, 2018, पृष्ठ 62
29. भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानंद, पृष्ठ 22
30. सामानो मंत्र: समिति समानी समानं मन: सहचितमेषाम,
समानं मंत्रभि मंत्रये व: समानेनवो हविषा जुहोमि ऋग्वेद- 10/191/3
31. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, (2016), खंड 1, पृष्ठ 24
32. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, (2016), खंड 15, पृष्ठ 33
33. सिंह, अमरजीत, पृष्ठ 240
34. शर्मा, डॉ महेश चन्द्र, (2016), खंड 15, पृष्ठ 18